शब्द यात्रा / रणजीत गीतेश

प्रतिध्वनि
कलकत्ता
७०००००७

रणजीत गीतेश

शब्द यात्रा/रणजीत गीतेश की कविताएँ

प्रतिध्वनि के लिए मधु जोशी, ३१, सर हरिराम गोयनका स्ट्रीट,
कलकत्ता ७०० ००७ द्वारा प्रकाशित / भागचन्द सुराना, सुराना
प्रिंटिंग वर्क्स, २०५ रवीन्द्र सरणी कलकत्ता-७०० ००७ द्वारा मुद्रित।

आवरण विभूतिभूषण सेनगुप्त

प्रथम संस्करण १९९२

मूल्य तीस रुपये

SHABDA YATRA

Poems by RANJEET GEETESH

बाबूजी की स्मृति मे

—रणजीत

अनुक्रम

शब्द यात्रा

यत्क्रौंच मिथुनात

'यत्क्रौंच मिथुनात'
बस इतना ही काफी था
रत्नाकर का
वाल्मीकि बनने के लिए।

पता नहीं
कविता का जन्म
दो सफेद या दो लाल बूंदों से हुआ?

कविता !
क्या नही क्रौंच का पंख फड़फड़ाता है ?
क्या नही
कही कुछ धड़कता है
और न ही कुछ पिघलता है ?

आदमी खून से लथपथ
छटपटाता हुआ दम ताड़ रहा है
अबला आँखों से आँचल म
दूध की जगह खून टपक रहा है
अबाध आँखें पथरा गई हैं
मासूम चेहरा पर
भय और आतक के मुखौट हैं
हमारी आँखा के सामने
जगल-राज्य मे मनुज-वध
मृत्यु का आखेटक बन गया है
फिर भी
कवित !
कही कुछ सिहरता क्यो नही ?
क्या तू सचमुच मर गई है
या कि तुम्हारी आत्मा जड़ हो गई है ?

मैं जानता हूँ
तुम्हारे चीखने से
उनका कुछ नही बिगड़ेगा
मुझे तो ऐसा लगता है
तू आत्म-प्रवचना का दूसरा नाम है ।

तुम जो भी हो
मैं बस इतना जानता हूँ
तुम इस नए महाभारत म
अभिमन्यु के रथ का टूटा पहिया हो । ०

सलीब पर

चलो, अच्छा ही किया
जो तुमने दिए कतर
तितलियो के रगीन पर !

फूलो की महक
हवा मे तैरती लाशो की सडाध
मे ही बहक गई
कल्पना मे पखो पर बैठकर
कविता
मिसाइल की तरह आसमान से
बरसाने लगी आग
पखुडियो पर शबनम की जगह
टपकने लगा लहू
और प्रकृति
खामोश—स्तब्ध ।

कवि सोचने लगा
उसके हाथो मे
कलम है या कारतूस ?

यानो की गडगडाहट
और टैको के शोर-शराबे मे
खो गए
छद-लय ताल ।
भाषा ने उतार दिए
शब्दो के लिबास
एक हताश बौखलाहट
बडबडाता ही रहा आदमी
और कविता—
सोच के सलीब पर
शरविद्ध क्रौच । ०

सपनो का सौदागर

एक रात
सपना का एक सौदागर आया
और हमारी भूखी झोली मे
चुपके-से डाल गया
अनाज और सिक्क के वदल
कुछ सुनहले सपने ।

आँखें खुली
और मैं
खुशी स बल्लिया उछल पडा ।
उडेल दिय मैंन
अपनी फूस की झोपडी के सामन
परती ज़मीन पर
सारे सपने ।

सोचता रहा राज
सुवह-सुवह उठकर
प्रतीक्षारत रहा
—वे अवश्य अकुरित हाग
एक-न-एक दिन ।

दिन पर-दिन गए बीत
पर न अँकुराया कोई बीज ।

एक दिन
किसी ने कानो मे कहा—
'अरे मूख नादान !

क्यों होता हैरान ?
क्या तू नही जानता—
सपना की फसल
दिन के उजाले मे काटी नहीं
रात के अँधेर मे बाड जाती है।"

सपनो का वह बूढा सौदागर
जा लाठी टेक
चलता था तेज
उसकी ही बकरी ने
चबा लिय
मेर सपना के सारे दाने।

और वह खुद
किसी प्रस्तर-स्तम्भ पर
जाकर खडा हो गया
या किसी अदालत की दीवार पर
झूल गया
आश्वासन की मुद्रा मे
अपना दाहिना हाथ
ऊपर उठाय
मुस्कुराता हुआ
मेरी मूखता पर।

मुझे लगा
मैं छला गया
वह चला गया
और मैं पचशाला पाठशाला मे
चरखे पर
सच्चाई का सूत कातता रहा
सपना की चादर बुनता रहा
और राम नाम का धुन पर
सिर धुनता रहा। ०

भूखे-नंगे

भूख को हमने गिरवी रख दिया है
उस सूदखोर महाजन के पास
जो सुबह-शाम खाना खाकर
हाजमे की गोलियां खाता है।

और नंगापन ?
उसको तो हमने एक्सपोर्ट कर दिया है
पश्चिमी देशों को
जहां औरतें दो बित्ते कपड़े से ही
अपना तन ढंक लेती हैं। ०

चालीस साल से

व दौड रह है
कुर्सी के लिए, पद के लिए
विधान-सभा मे आसन के लिए
राष्ट्रपति के सिंहासन के लिए
वोट क लिए नोट के लिए
शतरज की चाल मे गोट के लिए ।
और
वह दौड रहा है
ढा रहा है
एक जोडा पहिए पर
मोट पट वाले महाजन का
सूट-बूट-धारी
आजादी के अमलातन्त्रा को ।

तब
वह बीस का रहा होगा
गान्ही बाबा की किरपा से
आजादी मिली ।

गाव की पगडण्डियो पर दौडता-दौडता
आज वह
महानगर की कालतारी चिकनी सडको पर
दौड रहा है ।

उसके पीछे एक रिक्शा है
(दो अशोक-चक्के पर)
और हाथो मे एक घुघरू
उसकी रोटी उसकी सवारी की जेब म है
जिस वह चालीस साल से ढो रहा है । ०

आज का अभिमन्यु

अभिमन्यु है हम !
हमारे तमतमाए चेहरे के सामने
हमारी मुट्ठिया म
लहरा रहा है—
रथ का टूटा पहिया
—हमारा आहत आकाश ।

हमारे लिए
न कही दुर्ग है
न कोई द्वार
भेदने के लिए
लक्ष्य भी तो नही है कोई
फिर भी रथ के टूटे पहिये की तरह
लडखडा रहे हैं हम
लक्ष्यहीन—पन्थहीन ।

धुधलाए आकाश म
सूरज को भी तो
सुदर्शन चक्र ने ग्रस लिया है ।

हाय री, विभ्रान्तिकर राजनीति !
क्या ऐसा नही लगता
महाभारत की पुनरावृत्ति का
प्राक्कथन है ! ०

निरोध

शिवलिंगा को
पारदर्शी झिल्लिया पहना
यह क्वारी सभ्यता
अपने मातृत्व के स्तन का
दूध निचाड़
नहला रही है। ०

सूय स्नान

समुद्र—मक्त की सतरगी रत पर
लेटे है औधे
कई जोडे नग जिस्म
लगता है
सभ्यता के मैदान मे
हुए शहीदा को लाश
हमने फेंक दी है
सम दर के किनार। ०

शोध

अतीत—
अजायबघर के शो-केस में बंद ममी'
वर्तमान—
सेनिटोरियम में कैंसराक्रान्त युवक'
भविष्य—
दो पल की भूल का गर्भस्थ अहसास । ०

सूरज देवता

सात अश्वा से जुते रथ पर सवार सूरज देवता !
नमस्कार !

गगन-चुम्बी अट्टालिकाओ के
बन्द कांच के दरवाजे
और बाम्बे डाइंग के प्रिंटेड
परदा से ढके वातायन के भीतर
ब्यूरोक्रेसी का
तुम्हारी प्रतीक्षा नही ।
डनलोपिलो की गद्दियो म धँसी
अलसायी अगडाई लती लेटी है वह
—उसे मुक्ति नही चाहिए ।

वह चाहती है तुम्ह
चिमनिया के धुए म कैद कर रखना ।

और तुम हो कि
जो तुम्हे करना चाहत हैं अंगीकार
उन्ह ही तुम करते रह अस्वीकार ।

सात अश्वा स जुत रथ पर सवार
सूरज देवता !
तुमको है धिक्कार
बार-बार !! ०

ये हाथ

ये हाथ
जिन्होंने कभी कुरुक्षेत्र में
चढ़ाई थी गाण्डीव पर प्रत्यंचा
इसलिए कि
इन हाथों ने देखा था
तुम्हारे हाथों में सुदर्शन-चक्र ।

जिन हाथों ने
तुम्हारी हथेलियों में
रख दिया था कवच-कुण्डल
जिन्होंने
अपने सामने फैले हाथों को
कभी खाली नहीं लौटाया ।

इन्हीं हाथों ने ही पाई थी
बोधि-वृक्ष तले
तथागत के वरद हस्त की छाया

इन्ही हाथा ने ही उतारा था यूनियन जक
और लहराया था—
लाल किले की प्राचीर पर तिरगा
इसलिए कि
इन हाथा ने तुम्हार हाथा म
बांधे थे
आस्था के कच्चे धाग ।

लेकिन
इन हाथा का तुमने थमा दी
बैलट बक्सा के साथ पार्लियामण्ट की कुजी
और पैंडोरा के बक्स
जिनक खुलते ही
रागाणु लाचारी
बीमारी
भुखमरी
अनाचार क्रन्दन व्यभिचार
हाथ लगे एक साथ
और हर तरह स लाचार
ये हाथ
तुम्हार ही सामने फल गए ।

जिन हाथा म तुमने थमाई थी गीता
निष्काम कमयोग के नाम पर
चढवाई थी गाण्डीव पर प्रत्यचा
तब भी छला था तुमने
इन हाथा को

आज फिर तुम्हार सामने फले हैं य हाथ
तुमस सूरज नही मागत—
इन्ह चाहिए दो जून की रोटी ! ०

पहचान

मेरी पहचान
मरा राशन काड है
गाया राशन काड नही
आइडेंटिटी काड हा !

मैं नही जानता
मेरी नागरिकता
सविधान की किस धारा के किस अनुच्छेद म
परिभाषित है
सिफ इतना जानता हूँ
सरकार मेरे लिए
दोनो वक्त का खाना जुटा देती है
इसलिए
मैं इस देश का नागरिक हूँ।

भूख ही मापदण्ड है
मेरी नागरिकता का !

इतिहास हम एक है

इतिहास
नारा स नहा लिखा जाता
इतिहास
तलवारा स लिखा जाता है
इतिहास हमला
और हमलावरा की
बुजदिला—
हत्यारा की कहानी है।

इतिहास ताश क पत्त की तरह है—
फटते रहा—फेंटते रहा।
पर ताश के पत्त
वहा रहग

—जो कल थे
—जो आज हैं
बादशाह-बेगम-गुलाम।

ज़र-ज़मीन जोरू के लिए
इतिहास लिखा जाता रहा
सिलसिला चलता रहा
महाभारत से मोहनजोदड़ो तक
स्वार्थों को जोड़ने का
एकता को तोड़ने का
और एकता
बिजली के खम्भे से लटकती
एक मरी हुई चिड़िया है
जिसके इर्द गिर्द
प्रजातन्त्र के कौवे कांव-कांव
कर रहे हैं।

समझौते की मेज़ पर
बिछा है भारत का भूगोल
और हम
उस पर
इतिहास की कलम चला रहे हैं
बांट रहे हैं
सतलज और ब्रह्मपुत्र का पानी
हरियाणा और पंजाब की राजधानी
कौरवों की ही तरह
अपना एक भी गांव
अपने ही भाइयों को देने में आनाकानी
और बातें करते हैं—
—'हम एक हैं
हम हैं हिन्दुस्तानी'! ०

वृत्त के अन्दर दो हाथ

जब कभी दीवार पर मैं देखता हूं
—एक जोड़ी सरकती सुइयाँ
घड़ी की परिधि के अन्दर
डोलता दोलक
समय के कोण के भीतर।

एक रोटी है टंगी
दीवार पर
घूमते दो हाथ
अन्दर वृत्त के आठों पहर।

नीलाकाश पर
रक्ताभ दिनकर
एक रोटी-सा
उठ रहा ऊपर
हज़ारों हाथ लहरों से
निकल बाहर
पकड़ने को जिसे लहरा रहे
हरदम परेशान
किस कदर!

हाथ दो
पर वृत्त के अन्दर
हज़ारों हाथ बाहर। ०

मेरा कमरा

मेरी जि़दगी की हर रात के
अकेलेपन का यायावर ठहराव—मेरा कमरा।
जहा रोज बुनती हू
स्मृतियो की मकडिया
मपनो की सुनहरी जाली
व्यक्तित्व के दपण मे
कभी-कभी बतियाती
मेरी आंखे।

विवेक की बुझती बुझती सी मोमबत्ती
जो मेरे सोने के साथ-साथ
सो जाती है
मोरचा लगी कील से लटकी
घासलेट की काली खाली शीशी
कालिख पुती चिटखी चिमनी वाली लालटन
गवाह है—
परत-दर-परत
पहने पुराने कपडो स बना कथा,
वेदना के धागो से टाकी गई
अनगिन चुभन
करवटें बदलती है
मेरी जि़दगी जिस पर।

मेरा कमरा
सिफ एक पडाव है
मेरी जि़दगी की हर रात क
अकेलेपन का ठहराव है। ०

काली तितली और बुद्ध प्रतिमा

शांत शारद रात
वातायन की राह
काले-काले पर फर्राती
इक तितली आई।
कमरे में अधलेटा मैं
अधमुंदी आंख से देख रहा था—
बैठ गई वह
बुद्ध-मूर्त्ति पर।

कमरे में था अंधकार पर
प्रतिमा के ही सिर के ऊपर
बिजली बत्ती की आभा थी
सब कुछ दीख रहा था सुंदर।

इतने में कुछ मच्छर आये
इधर-उधर आकर भन्नाए
मेरी सोती बिटिया को
वे काट जगाये।

रोती उठकर बैठ गई वह
मुझ तनिक गुस्सा-सा आया
ताली बजा-बजाकर मैंने
मार भगाया।

चार भगाए, चौदह आये
उनकी बढ़ती आबादी से
मैं झल्लाया
बिजली के पंखे का
मैंने बटन दबाया
तेज हवा का झोंका आया
मच्छर सिर पर पर रख भागे
इसी बीच तितली ने भी
पर फराये
इस कोने से उस कोने में
उड-उडकर वह बैठ रही थी।

तभी अचानक
तितली गिर गई आहत होकर
पंखे की पत्ती से कटकर
पर भी दूर गिरे विस्तर पर
तितर-बितर
बिखर बिखर कर।

अपराधी-सा मैं घबराकर
देखा ऊपर आंख उठाकर
गौतम शयन-कक्ष से बाहर
खड द्वार पर
देख रहे थे पीछे मुडकर
वनिता-सुत शायित बिस्तर पर
सुध-बुध खोकर
प्रतिमा के मुख-मण्डल पर
भाव मुखर! ०

मोनालिसा की मुस्कान

मानालिमा का
मदभरी ? ममतामयी ? आंखा क
करुण कारका स झांकती मुस्कान
और मीपिया अधरो के मधि-स्थल पर खिची
व्यग्य की तियक रखा के तरगो पर तिरती
प्रश्नसूचक मुद्रा
मानो
अपने कलाकार का ही
कुतूहली दष्टि से देखती हुइ
कह रही हा—
"मेर स्रष्टा !
तुम्हारी दष्टि ने मेरी मुस्कान चुरा ली
और मेरी आखा की वासना के अतहीन विस्तार म फल
एक सपाट बियाबान रेगिस्तान म
मातृत्व की मृग-मरीचिका के पीछे भागती
ममता के मरुद्यान की तलाश को ही
अपनी तूलिका स तराश

तून
मेरी प्रतिकृति का अपनी कला-साधना का
अंतिम सोपान मान लिया ?

धिक्कार है तुम्हे चित्रकार !
पथरा क्या गई थी तुम्हारी आखे
उस दिन
जिस दिन अपनी गर्भवती स्त्री को
युद्ध-जर्जर बजर खेतों की मेड पर खडी
हाथ हिलाती हुई
'अलविदा' कहती अकेली छोड
वह सिपाही चला गया
और जग के मैदान मे जाकर खेत रहा।

उसके नवजात नन्हे शिशु का
स्तनपान कराती
क्षुधातुर विधवा मा की
आखो की गहराई मे
उतरने की कोशिश क्यो नही की
तुम्हारी कला-दृष्टि ने ?

अगर
उन अभागिन आखो की गीली पलको की
ओट मे अटकी
करुण वात्सल्यमयी मुस्कान की
इक बूद का भी
तुम्हारी तूलिका रग दे पाती
तो मै मान लेती
तू सच्चे अर्थो मे
एक सफल शिल्पी है
और तुम्हारी चित्र-कला
एक शाश्वत चिरतन चित्र-काव्य।" ०

मेरा शहर

तुम एक अजनबी द्वीप ही सही
मैं तुम्हारे लिए अजनबी तो नही
न था, न हू ।

जिसे तुम अपने आंचल में
समेट लेती हो
वह तुम्हारे लिए
कैसे अजनबी हो सकता है ?

खलिहानों में खेल रहा था
किसी चौपाल से आवाज़ आई थी
—'फलना के फलना कमालभ कलकत्ता' ।

किसी अँगूरी पहाड़ी पर खड़े होकर
जुगनुओं की जगमगाती रोशनी में
किसी द्वीप को देखने में
जैसा लगता है कलकत्ता !
तुम वैसी ही उभरी थीं मेरी कल्पना में
एक चिर-परिचित द्वीप की तरह ।
मेरे अहसास के जंगल में
हज़ारों-हज़ार जुगनू जगमगा उठे थे
तब
मैंने माँ से पूछा था
—कलकत्ता कहाँ बिकता है मां' ?

आज
मैं खुद बिक गया हूँ अमोल
बिछ गया हूँ तुम्हारे विस्तार में
मेरा अस्तित्व
तुम्हारे अजनबीपन में समा गया है
मेरा अजनबीपन
तुम्हारे अस्तित्व की भीड़ में खो गया है ।

मेरे शहर में
मैं अजनबी हूँ
तुम चिर परिचित । ०

हाशिये पर

शहर के सफ्हे पर
सडक के हाशिये की तरह बिछा
सिन्दूरी शाम का
रूपहली साडी के किनारे
गोट जाली की तरह जगमगाता
फैला तुम्हारा आँचल
जिसमे सजे खोमचे
खट्टा पुचका
बेल का शरबत
मौसमी रस
हरे-हरे खीरे
आम-अमरूद और संतरे
जूते-चप्पल
बनियान और ब्रेसियर
ज्योतिष पंजिका पसारे पामिस्ट
भविष्य टटोलता
पिंजडे मे बन्द तोता
पराठे और पूरियाँ
चाउमिंग और चिलिचिकेन
चाय-काफी-लस्सी

पान के बीड़े और पहलवान छाप
पत्र-पत्रिकाएँ
पुचका में भरे रस की तरह
खट्टी-मीठी नमकीन कहानियां
नाचते बन्दर मदारी का खेल
आंचल पसार अन्धी भिखारिन
पास लेटे बीमार बच्चे
चहलकदमी करते
चलते-फिरते चकलाघर
नथुनों को फड़काती
गुजर जाती गन्ध
और छू-छू जाने का अहसास
सब कुछ बिखरा होता है
तुम्हारे आस-पास।

लेकिन,
तुम्हारे आंचल के नीचे बिछा है
एक और शहर।

एक शहर और
धड़क रहा है तुम्हारे सीने में
तुम्हें स्पन्दित कर रहा है—भूगर्भ रेल
एक शहर—तुम्हारे नीचे बह रहा है
एक शहर और
रेंग रहा है तुम्हारे ऊपर
रौंद रहा है तुम्हें रोज रात-दिन।

तुम्हारे सीने पर
मन्त्रीजी वन-महोत्सव मना रहे हैं
और नगरपालिका
सुलभ शौचालय बनवा रही है।

एक शहर अंधेरे में
तुम्हारे किनारे रिस रहा है
लैम्प-पोस्टों के नीचे
जलते घाव की मानिन्द
नंगा लेटा है।

वही शहर
सूरज के उजाले का मुखौटा पहने
सफेद लिबासों में लिपटा घूमता है।

तुम्हारे बिस्तर पर
कुमारियाँ बिकती हैं
और विधवाएँ सधवा होती हैं
भिखारी ऋतुपर्व मनाते हैं
और भिखारिनें बच्चे जनती हैं
होटल के सामने वाले
नाबदान से बटोरी गई
रोटियाँ सूखती हैं
नंगे बच्चे भूख से बिलबिलाते हैं
बीमार बच्चे
अकाल-काल कवलित होते हैं
और बूढ़े भिखारी ठण्ड से ठिठुरकर
दम तोड़ देते हैं।

सवेरा होता है
नगरपालिका सब कुछ बटोर लेता है
और एक बार फिर
तुम
सज-धज कर पसर जाती हो
हाशिये पर। ०

मौसम यायावर हो गया है

लगता है मौसम यायावर हो गया है
किसी बिगडैल विद्यार्थी की तरह
जो कालिज-बन्द के दिनो मे भी
शहर की आवारा सडको पर
लडकियो का पीछा करता फिरता है।

जब
मौसम का यह यायावरपन
आवारापन-सा लगता है—
क्योकि यह गाव के खेतो-खलिहानो मे
खेलता-खेलता
भाग आया है—
शहर की चढ्ढी उम्र वाली पक्की सडको पर।

खेती प्यासी है
किसी गरीब किसान बाप की
जवान क्वारी बेटी की तरह
लेकिन यह बार बार
बरस जाता है

उन्ही गहरी गहरी गन्दी नालियो मे
जिसमे न जाने कितने भ्रूण
बे-मौसम बह चुके होते हैं।

गाँव की सोधी मिट्टी की महक
इसके नथुनो को फडका नही पाती
इसलिए यह शहर की जाम ट्रैफिक
के बीच आ खडा हो जाता है
जहाँ घुटने भर जल मे खडा
घुटनो से ऊपर
साडियाँ समेट भीगी औरतें
अपने पल्लुओ को निचोड रही होती हैं।

सारी देह-गन्ध
सडको पर जमे जल मे घुल जाती है
और गीली हवा मे एक मादक
महक तैर जाती है।

नगर-पालिका के प्रकाश-स्तम्भो
से बँधे बैनरो पर
बार-बार बरस कर
यह न जाने कितने नारे धो डालता है।

कोलतार की स्लेटी सडको को
जब यह पिघला देता है
तो 'एकला चलो रे' के साथ चलने वाली
हज़ारो हवाई चप्पलें
चप्पे-चप्पे पर चिपक जाती हैं
और नारे भाप बनकर
इतने ऊपर उड जाते हैं
कि हवा मे लहराती
हमारी बन्द मुट्ठियो की उछाल
उन्हे पकड नही पाती है। ०

नक्सलपंथी प्यार

कल तक तो तुम
मात्र मुझे ही
ललचाई नज़रों से देखा करती थी।

अब सुनता हूँ
तुम किसी और की ओर
उन्हीं नज़रों से देखती हो।

मुझे ऐसा लगता है
तुम पश्चिम बंगाल हो
और मैं
तुम्हारे मन के पार्क में स्थापित
विवेकानन्द की प्रतिमा
जिसके चेहरे पर
अलकतरा पोत दिया गया है।

लगता है
तुम्हारा प्यार भी
नक्सलपंथी हो गया है। ०

शब्द यात्रा

वर्णमाला से व्याकरण तक
ढाई आखर के शब्द-यात्रा-पथ मे
व्याकरण के जगल मे
मैं भटक रहा हूँ
अर्थों की तलाश मे—
नारी और पुरुष के
अनबूझे सम्बन्धो के
आदिम अर्थ ।

तब तुम स्वर थी
और मैं व्यजन
तुम्हारे सान्निध्य से ही
उच्चरित हुआ था मैं
प्रथम बार।

तब मैं भी एक सज्ञा था
सज्ञा थी तुम भी
दोनो सज्ञाओ को
समय की अल्हड अँगुलिया ने
पाछ दिया धीरे से
उस नटखट बालक की तरह
जो अपनी स्लेट पर
खडिया से लिखकर
पोछ देता है पाठशाला मे।

समय-समय पर
कारको मे
बदलते रहे हम
बनते-मिटते रहे
सम्बन्धा के झूठे सपने।

अन्त म
हमार बीच
शेप रहा
मात्र
सम्बन्धा का एक सम्बोधन।

पन्ने पलटते गये
सबनाम से विशेषण बनते गए
और हम
भाववाचक सज्ञाओ मे बदल गए। ०

काला हीरा

पहचाना मुझे ?
मैं तुम्हारी प्राणी-सभ्यता का आदिम अवशष हूँ।

मैं तुम्हारी सभ्यता का सबस पुराना
सृष्टि क आदि पव का
प्रथम शिलालेख हूँ

मैं आग हूँ
वही आग
जो मेरी मुट्ठिया म आज भी ब द है
वही आग
जा सूरज के पास है
वही आग

जिसे साक्षी मानकर सात फेरे डालकर
किसी क्वाँरी कन्या की कोरी माँग मे
सिन्दूरी किरण पहनाते हो।

वही आग
कभी नीले समन्दर की छाती पर
काल-नर्तन करती है
काली भवानी-सी शिव की छाती पर
रक्त-रंजित चरण रख चलती है।

मुझ मे बन्द है—एक विराट दावानल
आज मैं कैद हूँ खानो मे
बन्द है जिस तरह तुम्हारा विनाश
तुम्हारे ही बनाये परमाणु बमो मे
उसी तरह
पिछले प्रलय का इतिहास मुझ मे ही छिपा है
मुझ काल-मंजूषा मे ही बन्द है
तुम्हारे मन्वन्तर का कथानक।

तुम्हारे देव, किन्नर, गन्धर्व के
रक्तचाप का ताप
मेरी रगो मे दौडने लगा
और मेरा रंग काला हो गया।

कुछ लोग कहते हैं
मुझ मे वनस्पतियो की हरियाली
और प्राणियो के रक्त की लाली छिपी है
कुछ लोग कहते है
मैं कोयला हूँ काला पत्थर हू, ढेला हूँ।
लेकिन मैं जानता हूँ
मैं काला हीरा हूँ,
नेल्सन मैण्डेला हूँ। ०

और सब तो ठीक है !

अरे, तुम !
कहो बन्धु, कब लौटे गाँव से
और सब ?

और सब तो ठीक है
गाड़ी दो घण्टे लेट आयी।

सो तो है ही
और सब ?

और सब तो ठीक है
पिताजी को वात की बीमारी हो गई है
वैद्यजी कह रहे थे
माताजी को दम की शिकायत है।

सो तो है ही
और सब ?

और सब तो ठीक है
एक बीघा ज़मीन गिरवी रख दी है
मुझे बी० ए० करना है।

सो तो है ही
और सब ?

और सब तो ठीक है
वह जो बुढ़िया थी न,
जिसका इकलौता बेटा
मिलिट्री में चला गया है
मर गयी।

मर गयी ?
बेचारी !
और सब ?

और सब तो ठीक है
पिताजी ने मना किया है
"कविताओ से फ्यूचर बिगड जाता है
जवान हो चुके हो।"

सो तो है ही
और सब ?

और सब ता ठीक है
इस बार पिछले साल से भी अच्छी
फसल होगी।

सो तो पिछले साल भी
तुमने कहा था।
और सब ?

और सब तो ठीक है
वह जा फुलवतिया थी न,
पडास वाली चमारिन
रमभजना के साथ भाग गयी।

भाग गयी ?
छि ! छि !!
खैर ! यह ता होता ही रहता है
और सब ?

और सब तो ठीक है
पिछले साल हैजा फैल गया था
इस साल माताजी का प्रकोप है।

सो ता होता हो रहता है
और सब ?
और सब ता ठीक ही है ! ०

जीना क्या होता है ?

बन्धु !
हमने मांगी थी सनातन जिन्दगी
अपने पुरखा से
और 'अथमेटिकल प्रोग्रेसन' म
लौटाता रहा
वत्त मान के साथ जोडता हुआ भविष्य ।

व धु !
हमने मागी थी धूप की छाजन
आगन के ऊपर ।

छाया रहा पर
बीती अधेरी रात का कोहरा
गुमसुम उदास दापहर के वतमान का बादल
तट पर बठी अकेली साझ का अँधेरा ।

ब धु !
हमने माँगी थी विशुद्ध आत्मा
वह मिल तो गई
पर अब जिसका प्लास्टिक सजरी कर
शहरीकरण कर दिया गया है ।

ब धु !
हम उन हरी घासो की तरह
विजन मे मेडो पर उगते
तो कितना सुखद होता ?
—जो बार बार
परिचित परो तले रौंदा कर भी
फिर हरिया जाती हैं ।

ब धु !
हम भी जी लेते
अजनबीपन और असमथता के अहसास
स आजाद
मृत्यु-बोध से अपरिजित
यह जान बिना
कि जीना क्या होता है ! ०

होड़ भरी जिंदगी

जिंदगी
खाली बाल्टी-सी
है कतारों में
नलों के सामने।

होड़ भरने की लगी
टकराहटें हैं झंझटें
जोर जिसमें है वही
आगे बढ़ाकर
बाल्टी अपनी
है लेता भर
जबरदस्ती।

तभी
पानी चला जाता
घड़ा अपना लिए खाली
मैं आता लौट घर
शुष्क मन उच्छवास भर। ०

हे राम !

हर साल दौड़ते रहे
दफ्तरों के दरवाजे खटखटाते रहे
नौकरी के लिए दरख्वास्त पठाते रहे
रोजगार दफ्तरों में अपने पंजीयन-पत्र पर
नयी तारीख की मुहर लगवाते रहे।

हर साल एक नयी उम्मीद
इस साल ज़रूर ।

—और इस तरह मेरी उमर के ढाई दशक
दौड़ गए
बन्द हो गए सरकारी नौकरी के
सभी दरवाजे।

आजादी के चालीस साल बाद
आज फिर
मुझसे दौड़ने को कहा गया है।
जी हां, मैं दौड़ूंगा—ज़रूर दौड़ूंगा।
दौड़ेंगे मन्त्रीजी, दौड़ेंगे नेताजी
दौड़ेंगी बड़ी-बड़ी फिल्मी हस्तियाँ
दौड़ेंगी बड़ी-बड़ी आंखें दूरदर्शन की
मैं भी दौड़ूंगा—कमरे के पीछे
जी हां, मैं भी दौड़ूंगा
शान्ति-वन से शक्ति-स्थल तक
विजय-चौक से पराजय-परिक्रमा तक
और पार्लियामेंट की परिक्रमा करता-करता
हे राम ! हे राम ! हे राम !!!

हांफता रहूँगा—हांफता रहूंगा। ०

बिटिया का गुल्लक और ब्याह

पापा से पाये पैसो से
थोडे खच कर
कुछ कम खाकर
कुछ राज बचाकर

पाँच वरस की बिटिया मेरी
पुस्तक का बस्ता विद्यालय से ही आकर
पटक मे परज चढ जाती है
सिक्के जा मुट्ठी मे उसके
कसे हुए है कद कभी से
ताखे पर रखे गुल्लक मे
एक-एक कर चुपके चोरी
डाल रही है।

तभी शब्द सुनता मैं 'खन-खन'
—ध्यान भग कुछ हा जाता है
पुस्तक स मैं आख उठाकर
उसके चेहरे को पढता हूँ।

आंखा मे जा खुशी तरती
मुभका वह आश्वस्त हरती
कहती मुझस—
 पापा तुम दिल क मरीज हो
मेरी चिन्ता तुम ना करना
मैं पैस जा जोड रही हूँ
गुल्लक भर जाएगा एक दिन
तुम पाआगे ढेरो पैसे
उन्हे वैंक मे रख आना तुम
सुनती हूँ व वढ जायेंग
और उन्ही पैसो-रुपया स
दूल्हा लाना,
धूमधाम स ब्याह रचाना
मैं उससे ही ब्याह करूँगी
दुल्हन वनकर राह धरूँगी। ०

पुल के नीचे नाव

किसी पुल के नीचे से
गुज़रती नाव
जब आड़ लेती है
अचानक छाँव
पल दो-चार पल ही

सुखद सिहरन-सी
लहर पर वह चली
इस तरह कुछ
वह मिली

दूर तक फैला
उजाला ही उजाला
धूप ही बस धूप है

पीछे रह गई छाया
लहर से खेलती । ०

देश दरकती दीवार

वक्त की बौछार
सह रही दीवार
धुल रही सुर्खी
जुडी हर ईट
जिससे ।

खडी है फिर भी
बुलन्दी मे
इमारत यह ।

कोपलें फूटी
वही
अब दीख रही दरार
वट और पीपल की
जडें फली
शिराओ सी
सस्कृति की ।

गिर कभी सकती है
क्या दीवार ? ०

सीपी और समुद्र

लहराता नीलांचल
तट पर
तृषित नयन युगल
तक्ती अविकल
दुग्ध-धवल
फेनिल सैकत पर
शायित थक्कर ।

सीपियाँ नितर-वितर
अनगिन आंख आखर-आखर
लौट गई लहरें लिखकर
रतीले तट पर
अनबुझ आदिम प्यास मुखर ।

अस्ताचल पर
ताम्र-कलश-सा दीप्त दिवाकर
लहरा की छाती म भर
उच्छवास निर तर
रेता पर रेखायित कर
अगजग की प्यास अमर ।

सामने था दृष्टि-पथ पर
स्वप्न का सारा सम दर
स ध्या का स्नेहिल आचल
चुन रहा था मन चचल
कृपण-सा
सीपियाँ तट पर । ०

बुद्ध की प्रतिमा   पान की दुकान

बुद्ध की प्रतिमा सजी है
पान की दुकान पर
सिगरेट और माचिस के भी
डिब्बे लगे हैं
पास उसके।

पान खाकर
आईने में देखता हूँ
होंठ से लिपटी हुई हैं
खून की बूंदें।

थूक देता हूँ—ज़हर यह लाल
आत्म-प्रवंचना का
मुस्कराकर। ०